नासदीय सूक्त (हिंदी काव्य-अनुवाद)

असत् नहीं था तब, ना ही सत् था,
अंबर नहीं था, ना ही पार फैला हुआ महा-आकाश।

छिपा क्या था और कहां, किसने थामा था इसे,
तब तो अगम अगाध जल भी कहां था।

मृत्यु नहीं थी वहां, ना ही अमर जीवन,
रात नहीं थी और ना दिन के प्रकाश का संकेत कोई।

बिना हवा के सांस लेता हुया,
अपने आप पर निर्भर, तब केवल एक था,
उस के सिवा कोई दूसरा नहीं था।

अँधेरा था वहां, अँधेरे से ढंका हुआ,
अंधकार था चारों तरफ।

था तो बस निराकार शून्य,
तपस की महा ऊर्जा से उत्पन्न हुया पुंज।

फिर, पहले पहल, कामना का हुया उभार,
मन का आदि-जुनादि बीज।

अंतर की सूझ वाले मुनिजनों ने,
समझ लिया था भली भांति,
रिश्ता क्या है अस्तित्व का अनस्तित्व के साथ।

फैला दिया उन्हों ने सूत्र को,
महा शून्य के आर पार,
ऊपर वार और नीचे भी।
धारणी महा शक्तियां तत्पर थीं वहां,
नीचे थी ऊष्मा, ऊपर असीम ऊर्जा।

कौन जानता है, कैसे उत्पन्न हुया यह संसार,
देवताओं का भी बाद में हुया प्रादुर्भाव।

ना जाने रची गई, कब यह रचना,
कौन है सृष्टि का कर्ता, कर्ता या अकर्ता?
अंतर्यामी कौन है, ऊंचे अंबर वाली इस धरा का?

वही जानता है, जो है स्वामी इसका,
या फिर शायद वह भी नहीं जानता।

ऋग्वेद 129.10 (काव्य-अनुवाद: जगबीर सिंह)